महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

हिंदी शिक्षण अधिगम केंद्र

एवं

शिक्षा विद्यापीठ

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 15-16 मार्च, 2016

प्रतिवेदन/रिपोर्ट

संगोष्ठी

कार्यक्रम विवरण	कार्यक्रम का स्वरूप	कार्यक्रम स्थल	अवधि	आयोजक
कक्षा व पाठ्यपुस्तकों से परे अधिगम की संस्कृति	राष्ट्रीय संगोष्ठी	वर्धा, महाराष्ट्र	15-16 मार्च, 2016	हिंदी शिक्षण अधिगम केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा तथा शिक्षा विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

केंद्र द्वारा आयोजित 'कक्षा व पाठ्यपुस्तकों से परे अधिगम की संस्कृति' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी (दिनांक 15-16 मार्च, 2016)

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में हिंदी शिक्षण अधिगम केंद्र के सहयोग से शिक्षा विद्यापीठ द्वारा 15-16 मार्च को आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला के पूर्व कुलपति तथा 'आल इंडिया एसोसिएशन ऑफ यूनिवर्सिटीज़' के महासचिव प्रो. फुरकान क़मर की अध्यक्षता में हुआ। संगोष्ठी की शुरुआत अतिथि प्रो. फुरकान क़मर और डॉ. डी. एन. गौतम द्वारा दीप-प्रज्ज्वलन से हुआ। सर्वप्रथम प्रो. के. के. सिंह (अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा) ने हिंदी शिक्षण अधिगम केंद्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए विषय-प्रवर्तन किया और उसके बाद अतिथि वक्ताओं का अंतर्दृष्टिपूर्ण वक्तव्य हुआ। संगोष्ठी में पूरा विमर्श मूलतः निम्नलिखित उप-शीर्षकों के अंतर्गत हुआ :

1. 'पाठ्यपुस्तकों की परिधि से परे पाठ्यचर्या में नवाचार'
2. 'प्रभावी कक्षागत प्रक्रिया के लिए वैकल्पिक शैक्षणिक अन्तःक्षेप'
3. 'शिक्षण, अधिगम और जानने की प्रक्रिया में संकल्पनाओं का निर्माण'

4. 'पृच्छा आधारित सीखना : न-सीखना और पुनःसीखना'
5. 'कक्षा व कक्षा से बाहर विचार, खोज और जिज्ञासा की संस्कृति'
6. 'मूल्याँकन प्रणाली में नवाचार युक्त रूपान्तरण'

राष्ट्रीय संगोष्ठी के **प्रथम सत्र** में बोलते हुए डॉ. डी. एन. गौतम ने बताया कि कैसे विज्ञान की कुछ धारणाओं को प्रकृति के सहज-सामान्य उदाहरणों द्वारा समझाया जा सकता है। उन्होंने शिक्षण को आसान और रुचिकर बनाने पर ज़ोर दिया। इसके बाद प्रो. फुरकन क़मर ने इस प्रश्न पर बल दिया कि कैसे आज हमारे देश में सामान्य कक्षाओं तथा निर्धारित पाठ्यक्रमों के अलावा भी छात्र सीख सकते हैं और नए-नए ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि पाठ्यचर्या की योजना में व्यक्तिगत भिन्नताओं पर ध्यान देना ज़रूरी है। इसके बाद प्रो. रमेश दवे, प्रो. ओ. एस. के. एस. शास्त्री ने शिक्षण को आनन्ददायक बनाने में शैक्षणिक-नवाचार पर ज़ोर दिया। इस सत्र की अध्यक्षता हिंदी के जाने-माने कवि बुद्धिनाथ मिश्र ने की।

अगले दिन 73 शोधपत्रों में से 35 शोधपत्रों का चार समानान्तर सत्रों में पाठ हुआ। जिसमें आठ राज्यों से आए प्रतिभागियों ने अपने निष्कर्षों और विचारों को साझा किया। **अनुपमा कुमारी** ने **'पाठ्य पुस्तकों और कक्षाओं से परे शिक्षा की चुनौतियाँ और समाधान**' विषय पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया जिसका सार यह था कि पाठ्य पुस्तकों और कक्षाओं से परे शिक्षा का मॉडल बच्चों के चहुमुखी विकास के लिए एक बेहतरीन व कारगर तरीका है, जिसमें उन्हें किताबी बोझ नहीं ढोना पड़ता और समाजिक व व्यक्तिगत विकास स्वयमेंव होता रहता है। इस तरह की शिक्षा के लिए कोई नियत स्थान नहीं होता बल्कि वह एक जंगल, एक समुद्र तट, एक राष्ट्रीय पार्क, खेत, कारखाना, कार्यालय, पड़ोस का कोई विज्ञान केंद्र और प्राकृतिक स्थान, स्कूल का मैदान या कोई स्थानीय स्थान हो सकता है। जिसमें दर्शक भी शामिल हो सकते हैं। कक्षा की दिवारों से परे प्रासांगिक स्थितियों में उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षण गतिविधियों के साथ छात्रों को अलग-अलग दृष्टिकोण की मदद से तथा अनुभवों के आधार पर ज्यादा कुछ सीखने को मिलता है। इस तरह के प्रयोगों और अवसरों से छात्रों को विपरीत परिस्थियों में भी खुद को ढालने, कौशल विकास करने, सीखने, विश्लेषण करने, और समस्याओं को सुलझाने की विधा भी सीखने को मिलती है और उनकी प्रतिभा उभरकर सामने आती है, जो कई बार कक्षाओं में कदापि संभव नहीं हो पाता। उन्होंने कहा- हालांकि, कुछ लोगो का मानना है कि कक्षा के बाहर छात्रो को ले जाने से शिक्षण गतिविधियों, स्वास्थ्य और सुरक्षा का जोखिम उठाना पड़ सकता है लेकिन थोड़ी सी सावधानी और योजनाबद्ध होकर इसे आसानी से और मनोरंजक ढंग से किया जा सकता है।

टीना यादव का शीर्षक था- **'शैक्षणिक कक्षा से इतर व्यवहार नियमन**'। उनका शोध पत्र अधिगम की प्रक्रिया को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों से अलग हटाकर देखने का एक सुचिन्तित प्रयास था। उन्होंने कहा कि प्रत्येक बच्चा भिन्न है और उसकी मानसिक प्रक्रिया भी उसकी जरूरत और तैयारी के अनुसार भिन्न ही होगी। इसी विश्वास के कारण विद्यालय में बच्चों के व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं को लेकर अलग तरह का रूख रहा है। बच्चों को रोक–टोक कर दंड या भय के आधार पर उनको किसी निश्चित व्यवहार के लिए बाध्य करना कोई विकल्प नहीं है। न ही इस तरह किसी भी अधिगम के लिए प्रयास किया जाता है। बहरहाल बच्चों के मध्य व्यवहारगत उलझने, लड़ाई-झगड़े की घटनाएं पेश आती हैं । बच्चों की आयु के अनुसार पेंसिल-रबर से लेकर धक्का–मुक्की, खेल के दौरान कई रूपों में उनके झगड़े होते है। इसी पृष्ठभूमि में विद्यालय ने व्यवहार–नियमन को लेकर एक कार्यक्रम का आरंभ किया। बच्चों पर हुई व्यापक, दीर्घ चर्चाओं ने यह स्थापित कर दिया कि डॉट-फटकार से बच्चों की समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। अतः सकारात्मक रूप से बच्चे व्यवहार–नियमन तक पहुंचे इसी सोच के साथ एक राह पर चलने का निर्णय लिया गया। अब सवाल था कैसे और क्या ? बच्चों की खुद कही जाने वाली समस्याओं को सूचीबद्ध व वर्गीकृत करके कई चरणों में उन पर बात कर समझ बनाने का प्रयास किया गया। विद्यालय की स्थितियों तक पहुँचकर बच्चों को प्रश्नों के द्वारा अनुचिंतन में संलग्न कराकर स्थिति को सकारात्मक ढंग से हल करने का प्रयास शुरू हुआ। इस

तरह का अनुचिंतन कई बच्चों के साथ (समूहों के साथ) प्रयोग के रूप किया गया। इस प्रकार के काम की समीक्षा करने पर यह पाया गया कि बच्चे चर्चा से जुड़ पाते हैं किन्तु अपने ही सुझावों को क्रियान्वयन में ला पाना उनके लिए मुश्किल हो रहा है।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की शोधार्थी **प्रिया शैलेश क़दम** ने **'भाषा अधिगम में संकल्पना निर्माण का महत्व'** विषय पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि संकल्पना निर्माण का महत्व केवल सामान्य व्यवहार या चिंतन में ही नहीं बल्कि व्यक्ति की भाषा के विकास में भी है। मनोविज्ञान में संकल्पना निर्माण में किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की विशेषताओं के आधार पर उन्हें विभिन्न वर्गों में विभक्त किया जाता है। ऐसी बहुत सी संकल्पनाओं का निर्माण हम अपने दैनंदिन जीवन में करते हैं। भाषा अधिगम की प्रक्रिया में संकल्पना निर्माण महत्वपूर्ण है क्योंकि संकल्पना एक भाषागत प्रतीक है। किसी वस्तु की संकल्पना मन में निर्मित होने की प्रक्रिया में उस वस्तु को अन्य वस्तुओं से विभक्त करने के पश्चात उसकी विशिष्टताओं के आधार पर उसके प्रति संकल्पना का निर्माण होता है। जैसे- छात्र को बूढ़ा और बच्चा दो शब्द सीखने हैं तब बूढ़ा व्यक्ति और बच्चे के सामान्य लक्षणों के आधार पर उनके गुणधर्मों को जांच कर उसके अनुसार बूढ़े व्यक्ति को छात्र बाबा या दादा जी आदि के द्वारा संबोधित करता है अथवा अपने समवयस्कों के साथ वह उस आधार सूचकता को त्याग देता है और अनौपचारिक रूप में बातचीत करता है। भाषा शिक्षण में यदि वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन और अध्यापन किया जाए तो भाषा अधिगम कौशल केंद्रित प्रक्रिया है। भाषाई कौशलों में मुख्यतः चार कौशल आते हैं। श्रवण, भाषण, पठन और लेखन। इन चारों कौशलों के विकास में संकल्पना-निर्माण का विशेष महत्व है।

संदीप कुमार मिश्र के शोध पत्र का विषय था- **'प्राकृतिक परिघटनाओं के प्रति बच्चों की समझ'**। उन्होंने कहा कि प्राकृतिक परिघटनाएँ बच्चों के दैनंदिन जीवन का हिस्सा होती हैं और वे इन घटनाओं के दैनिक अनुभव और वैज्ञानिक व्याख्या में समायोजन बैठाने की कोशिश करते हैं। प्रश्न यह है कि क्या बच्चे स्कूली वैज्ञानिक अधिगम और दैनंदिन अनुभव से जोड़ने में सफल हो पा रहे है? संदीप अपने इस शोध पत्र में प्राकृतिक परिघटनाओं के प्रति बच्चों की समझ पता लगाने की कोशिश करते हैं। उनका यह शोध पत्र बच्चों के अधिगम और प्राकृतिक परिघटनाओं के बारे में जानने और इनके प्रति दैनंदिन संकल्पनाओं के निर्माण पर आधारित था। इसमें बच्चों की सीखने की प्रक्रिया का वर्णन और वैज्ञानिक अधिगम और दैनंदिन अनुभव द्वारा अधिगम पर ध्यान केन्द्रित करके बच्चे संकल्पनाओं का निर्माण कैसे करते हैं इस पर प्रकाश डालने वाला था। इस शोध से पता चलता है कि अधिगम केवल स्कूल या पाठ्यपुस्तक का हिस्सा मात्र नहीं है बल्कि यह समुदाय, परिवार और कार्यस्थल आदि संस्थाओं से भी संभव है। ये संस्थाएं प्रत्यक्ष रूप से अनुभव की हुई घटनाओं पर बच्चों को सोचने पर मजबूर करती हैं और प्रकृतिक परिघटनाओं की समझ पर आधारित भी होती हैं। सीखने के लिए समाज एवं सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश एक सक्रिय सहभागी की भूमिका अदा करता है। इस प्रक्रिया में सतत् सीखना और समस्या का समाधान अपने प्रत्यक्ष अनुभवों से होता है। बच्चे प्राकृतिक परिघटनाओं की अवधारणाओं का निर्माण वास्तविक अनुभव से करते हैं।

सीमा और अन्नू इंदौरा के शोध पत्र का विषय था- **शैक्षिक नवोन्मेष के विविध अभिरूप**। जिसमें उन्होंने बताया कि शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो कि समाज की निरंतर परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार अपना चरित्र, उद्देश्य व साधन बदलती रहती है। अत: शिक्षा को उसके सामाजिक संदर्भ से अलग नहीं किया जा सकता है। हमें बच्चे को शिक्षा के आरम्भ, केंद्र व अंत में रखकर मौजूदा पाठ्यक्रम और पढ़ाने की विधियों व साधनों के विकल्प तलाशने की जरूरत है। एक विद्यालय बहुत कुछ कर सकता है। यदि वह बच्चों को स्वतंत्र, चिंतन के साधन उपलब्ध करवाएं तो बच्चे तार्किक व विश्लेषणात्मक चिंतन की क्षमता को विकसित कर आगे बढ़ सकते हैं। आज शिक्षकों को बिल्कुल विचित्र परिवेश में काम करना पड़ता है जो कि मीडिया तथा सम्प्रेषण व सूचना तकनीक के क्षेत्र में विस्फोट से बना है जहाँ बच्चे विविध स्रोतों से जुड़े हैं। एक शिक्षक को उस दुनिया को और अधिक जानना होगा जिसमें बच्चे फल-फूल रहे हैं। क्योंकि कई बार हम देखते हैं कि शिक्षकों में नये वातावरण, नयी तकनीक और नयी शिक्षण विधियों को आत्मसात करने की कुशलता व समायोजन का अभाव होता है।

इसमें एक मुख्य कारण के रूप में हम शिक्षकों के लिए आयोजित की गई प्रशिक्षण कार्यशालाओं में निरंतरता व गंभीरता की कमी को देख सकते हैं। साथ ही शिक्षकों को स्वयं भी अधिक से अधिक सीखने व अपने हुनर को निखारने का उत्साह प्रकट करना होगा।

इस शोध पत्र में यह निष्कर्ष निकला है कि शिक्षक वर्ग आज के वैश्विक माहौल को और बच्चों की समस्याओं को समझ रहे हैं किंतु शिक्षकों के लिए दस्तावेजीकरण, प्रतिवेदन निर्माण, प्रशासनिक कार्यों के दबाव के बीच अपना सर्वोतकृष्ट् योगदान देना कठिन हो जाता है और उनकी सारी ऊर्जा केवल एकमात्र साधन पाठ्यपुस्तकों को ही पूरा करवाने पर खर्च हो जाती है। दूसरी तरफ विद्यालयों में ढांचागत सुविधाओं की कमी, परीक्षा व्यवस्था का दबाव (सतत् व्यापक मूल्यांकन आने के बावजूद भी पाठ्यपुस्तक को पूरा करवाने की होड़ में शिक्षक बच्चों की नवोन्मेषी क्षमता को पहचान नहीं पाते हैं) तथा विद्यालयी प्रशासनिक तंत्र व सहकर्मियों की ओर से सहयोगी रुख व समर्थन के अभाव में बहुत से शिक्षक नवोन्मेषी शिक्षण विधियों व साधनों को कक्षा में प्रयोग नहीं कर पाते हैं। अत: शिक्षक वर्ग ही नहीं बल्कि अभिभावकों सहित सरकारी स्तर पर भी सक्रियता व सहयोग की आवश्यकता है।

ब्रह्मानन्द मिश्र का विषय था- **पाठ्य पुस्तकों की परिधि के परे पाठ्यचर्या नवाचार**। उन्होंने कहा कि शिक्षा को सदैव ही मानव विकास की एक मात्र सीढ़ी माना जाता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश अंधकार का नाश करके संसार को प्रकाशमय बनाता है उसी प्रकार शिक्षा हमारे अंदर व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करके हमें सत्य का ज्ञान कराती है। वास्तव में शिक्षा का अर्थ व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। किताबी ज्ञान के अलावा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सकारात्मक विकास करना विद्यालय की जिम्मेदारी होती है। वास्तव में विद्यालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए जो बच्चों के शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास के अनुकूल हो। विद्यालयों में ऐसी पाठ्य सहयोगी क्रियाएं होती रहनी चाहिए जिससे बच्चों के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास हो। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए परम्परागत तरीकों के अलावा ऐसे नये तरीके भी खोजे जा सकते है जो विद्यार्थियों की प्रतिभा की पहचान करने में सक्षम हों। शिक्षा में नवाचारी गतिविधियों के लिए मानवीय संसाधन जैसे शिक्षक, अभिभावक एवं विद्यार्थी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसके बाद कुलपति, प्रो. गिरीश्वर मिश्र का प्रेरक वक्तव्य हुआ। दूसरे दिन के सत्र का आरम्भ अतिथियों के परिचय और स्वागत से हुआ। प्रो. अरविंद कुमार झा ने सीखने के सामाजिक अधिगम पर ज़ोर दिया और कहा कि शिक्षा को अनिवार्यतः रचनात्मक होना चाहिए। प्रो. हरजीत कौर ने उभरते हुए नये परिदृश्य में सीखने, न-सीखने और पुनःसीखने की महत्ता पर ज़ोर दिया। उन्होंने विज्ञान, समाज विज्ञान और तमाम क्षेत्रों में नवाचार पर ज़ोर दिया। डॉ. ज्योति रैना ने सीखने की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक तकनीकों पर ज़ोर दिया। विश्वविद्यालय के आवासीय लेखक श्री रमेश दवे ने कहा कि ज्ञान केवल पुस्तकों का बंदी न होकर, सर्वव्यापी होता है। मनुष्य जीवन में तीन तत्व लेकर पैदा होता है- एक है सीखना, दूसरा कमाना, तीसरा सतत् इच्छा करते रहना। किताबें हमें इन तीनों तत्वों के लिए प्रेरित करती हैं। रस्किन ने ठीक ही कहा था- 'एक अच्छी किताब मानव आत्मा का सर्वश्रेष्ठ निचोड़ है।' शिक्षा की वर्तमान दुनिया पुस्तकों के ब्रह्माण्डीकरण की दुनिया है। हम कागज पर ही छपी पुस्तक नहीं पढ़ते, अब तो दुनिया भर का ज्ञान-विज्ञान दूरसंचार व वेबसाइट के जरिए नेट पर पढ़ने की सुविधा है। यह किताब से किताब तक की तकनीकी यात्रा है।